

क्यों?

आज से बारह वर्ष पूर्व जब मेरा यह नाम था और न यह वेशभूषा । मैं 'कल्याण' सम्पादक-मण्डल का एक सदस्य मात्र था और मेरा नाम था शान्तनुविहारी द्विवेदी । श्रीवृन्दावन में यमुनातट-निकट-स्थिति श्रीजी की बगीची में गीताप्रेस के संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दका सत्संग हो रहा था । मैं भी बीच-बीच में वृन्दावनी भाव के अनुसार कुछ-कुछ कह देता था । वहीं श्रोताओं में सामान्य गृहस्थ के समान वेशभूषा में अपने कुछ सेवकों के साथ श्रीभक्तकोकिल जी भी बैठे हुए थे । उन्हें मेरी बात सुहायी । उन के मन में ऐसे भाव का उदय हुआ मानो उनका और मेरा परिचय बहुत पुराना हो ? हम दोनों मानों जन्म-जन्म के कोई घनिष्ठ सम्बन्धी हों । उन्हें मेरा सारा भविष्य सूझ गया और यह बात उन्होंने अपने सेवकों से कही । जब मैं वहां से उठा तब वे मुझसे मिले और अपने आश्रम पर चलने के लिये अपने सेवकों के द्वारा अनुरोध किया । मुझे 'कल्याण' के काम से रतनगढ़ जाना था, इसलिये स्वीकार नहीं किया । यही था हमारा प्रथम मिलन ।

जब मैं सन्यासी होकर वृन्दावन में आया, हमारी पुरानी प्रीति जग उठी । आना-जाना, खाना-पीना, हँसना-खेलना,



श्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती

एक दूसरे से परामर्श करना, सत्संग कथा वार्ता-यह सब प्रतिदिन का कार्य हो गया । इतनी घनिष्ठता, इतनी प्रीति, इतनी ममता कि वह न कहना ही उत्तम है । कहने से बात हलकी हो जाती है । मैंने ही श्री महाराज जी से उनकी बात-चीत कराई, मैं ही आग्रह करके श्री महाराज जी को उनके आश्रम में ले गया । मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि उनका आश्रम ही मेरा असली निवास-स्थान है । जिस समय मैं उनके पास बैठता भक्ति के ऐसे-ऐसे भाव हृदय में उठने लगते जा कभी अन्यत्र उठते ही नहीं थे । उनके सान्निध्य-मात्र से ही हृदय में एक प्रकार की भाव-तरंगें उठने लगती थी । एक अनिर्वचनीय नशा रोम-रोम में छा जाता था । घण्टों का समय मिन्टों की तरह बीत जाता था । कभी-कभी दो-दो तीन-तीन घण्टे मैं उनके सत्संग में ही बैठा रह जाता था ।

साईं कौन थे ? क्या थे ? उनका क्या बड़प्पन था ? यह एक अलग बात है । मुझसे जो उन्होंने प्रेम किया, आनन्द दिया, सेवा की, अपना समझा, इतने बड़े होने पर भी हमारे सामने बिना आसन के ही नीचे बैठे, पाँव दबाया-इस बात का मैं जब स्मरण करता हूँ, मेरा हृदय भर आता है । वही सत्संग है, वही आश्रम है, वही वृन्दाबन है और वही मैं हूँ, परन्तु मन खोया-खोया सा रहता है, वह साईं

को ढूँढ़ता है । उन्हें न पाकर एक महान् अभाव का अनुभव करता है । यह सही है कि वे हैं और यहीं हैं परन्तु मन उसी कोकिलकाकली के पंचम स्वर के लिये, उसी रस के लिये, उसी हास्य-विनोद के लिये और उसी भक्ति रस एवं माधुर्य से भरपूर मूर्तिमान् प्रेम के साथ हँसने-खेलने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है ।

मुझे भूमिका नहीं लिखनी है । जीवनी लिखने-लिखाने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी । जो हमारे मन में है, आँखों में है उसकी जीवनी क्या लिखना ? परन्तु उनके सत्संगियों के हृदय में जो उनके प्रति अगाध अजस्त्र एवं पूर्ण प्रेममयी स्मृति की धारा बह रही है उसका ही यह संस्मरण एक छोटी सी झाँकी है । यह दूसरों के लिये नहीं, अपने स्मरण के लिये संगृहित हुआ है । स्वांतः सुखाय ही इसका एकमात्र प्रयोजन है ।

साईं सदा प्रसन्न

श्रीकृष्णाश्रम, वृन्दाबन

अखण्डानन्द सरस्वती

बसन्त पंचमी, २००८

